(देश देशान्तरों में प्रचारित, सबसे सस्ता, उच्च कोटि का आध्यात्मिक-पत्र)

सन्देश नहीं मैं स्वर्ग लोक का लाई ।
इस भूतल को ही स्वर्ग बनाने आई ॥

वार्षिक मूल्य २) सम्पादक—श्रीराम शर्मा आचार्य । एक अंक ≡

वर्ष ६ } मथुरा, १ मई सन् १९४५ ई० { अंक

अपने को 'शरीर' नहीं, 'आत्मा' मानिए ।

आप अपने को आत्मा माना कीजिए। "मैं" या "हम", शब्द का अर्थ "आत्मा" है, यह बात अन्तःकरण में बहुत गहराई तक उतार लीजिए, उसे भली प्रकार हृदयङ्गम कर लीजिए । आपके मस्तिष्क में जो विचार उठते हैं, आपके मन में जो विश्वास जमे हुए हैं उनका सावधानी से निरीक्षण कीजिए और देखिए कि वे "आत्मा" जैसे महान तत्त्व के गौरव के अनुरूप हैं या नहीं ? आप जो काम करते हैं या करना चाहते हैं विचार कीजिए कि वे परमात्मा के राजकुमार के करने योग्य हैं या नहीं ? यदि आपका विवेक स्वीकार करे कि हाँ, यह विचार और कर्म आत्मा के महान गौरव के अनुरूप हैं, योग्य हैं उचित हैं तब तो उन्हें प्रसन्नता पूर्वक ग्रहण करते रहिए। यदि आपका अन्तःकरण कहे कि यह विचार और कार्य तुच्छ हैं, निकृष्ट हैं ओछे हैं, आत्म सम्मान के विरुद्ध है तो उन्हें साहस पूर्वक परित्याग कर दीजिए, दूध में से मक्खी की तरह निकाल कर दूर फेंक दीजिए। जिस विचार या कार्य को करने से आपको भय, झिझक, लज्जा अधम, असन्तोष पश्चात्ताप का अनुभव होता हो उसे एक क्षण के लिए भी मत अपनाइये भले ही उसके द्वारा सांसारिक बड़े से बड़ा लाभ होने वाला हो । जिस विचार या कार्य को करने से आपको प्रसन्नता, आनन्द, उल्लास, सन्तोष, गर्व, महत्त्व, सम्मान उन्नति, पुण्य का अनुभव होता है उसे अपनाने में एक क्षण के लिए भी विलम्ब मत कीजिए, भले ही उसके द्वारा कोई सांसारिक घाटा या हानि दिखाई देती हो यही आत्म-ज्ञान का सीधा सा मार्ग है।

मनुष्य को देवता बनाने वाली पुस्तकें ।

जो ज्ञान युगों के प्रयत्न से मिलता है उसे हम अनायास ही आपके सामने उपस्थित करते हैं

(१) मैं क्या हूं — मूल्य ।=)
(२) सूर्य चिकित्सा विज्ञान — ।=)
(३) प्राण चिकित्सा विज्ञान — ।=)
(४) पर काया प्रवेश — ।=)
(५) स्वस्थ और सुन्दर बनने की अद्भुत विद्या — ।=)
(६) मानवीय विद्युत के चमत्कार — ।=)
(७) स्वर योग से दिव्य ज्ञान — ।=)
(८) भोग में योग — ।=)
(९) बुद्धि बढ़ाने के उपाय — ।=)
(१०) धनवान बनने के गुप्त रहस्य — ।=)
(११) पुत्र या पुत्री उत्पन्न करने की विधि — ।=)
(१२) वशीकरण की सच्ची सिद्धि — ।=)
(१३) मरने के बाद हमारा क्या होता है — ।=)
(१४) जीव जन्तुओं की बोली समझना — ।=)
(१५) ईश्वर कौन है ? कहां ? कैसा है ? — ।=)
(१६) क्या धर्म ? क्या अधर्म ? — ।=)
(१७) गहना कर्मणो गतिः — ।=)
(१८) जीवन की गूढ़ गुत्थियों पर प्रकाश — ।=)
(१९) शक्ति संचय के पथ पर — ।=)
(२०) पंचाध्यायी धर्म नीति शिक्षा — ।=)
(२१) आत्म गौरव की साधना — ।
(२२) प्रतिष्ठा का उच्च सोपान — ।
(२३) मित्र भाव बढ़ाने की कला — ।
(२४) आन्तरिक उल्लास का विकाश — ।:
(२५) आगे बढ़ाने की तैयारी — ।
(२६) अध्यात्म धर्म का अवलम्बन — ।:
(२७) ब्रह्म विद्या का रहस्योद्घाटन — ।
(२८) ज्ञान योग कर्मयोग, भक्ति योग — ।
(२९) यम-नियम — ।
(३०) आसन और प्राणायाम — ।
(३१) प्रत्याहार धारणा, ध्यान और समाधि — ।:
(३२) तुलसी के अमृतोपम गुण — ।:
(३३) आकृति देखकर मनुष्य की पहिचान — ।
(३४) मैस्मरेजम की अनुभव पूर्ण शिक्षा — ।
(३५) ईश्वर और स्वर्ग प्राप्ति का सच्चा मार्ग — ।
(३६) हस्त रेखा विज्ञान — ।
(३७) विवेक सतसई — ।
(३८) संजीवन विद्या — ।
(३९) गायत्री की चमत्कारी साधना — ।
(४०) महान जागरण

अन्य प्रकाशकों की कुछ उत्तमोत्तम पुस्तकें ।

(१) सर्प विष चिकित्सा — ॥)
(२) जल चिकित्सा — ॥)
(३) गर्भ निरोध [संतान होना रोकना] — ।—)
(४) नेत्र रोगों की प्राकृतिक चिकित्सा — ॥—)
(५) दूध से सब रोगों का शर्तिया इलाज — ॥)
(६) संक्षिप्त दुग्ध चिकित्सा — ।=)
(७) प्राकृतिक चिकित्सा प्रश्नोत्तरी — ॥)
(८) प्राकृतिक चिकित्सा का सूर्योदय (दोनों भाग) — ॥।)
(९) बुढ़ापा और बीमारी से बचनेके सरल उपाय — ॥)
(१०) उपवास और फलाहार चिकित्सा — ॥)
(११) मिट्टी सभी रोगों की रामबाण औषधि है — ।
(१२) पृथ्वी की रोगनाशक शक्ति
(१३) नवीन चिकित्सा पद्धति
(१४) हमें क्या खाना चाहिए
(१५) तम्बाकू प्राण घातक विष है
(१६) धूप हवा और सरदी से आरोग्य
(१७) ज्वर चिकित्सा
(१८) वस्त्रों का स्वास्थ्य पर भयंकर प्रभाव
(१९) धातु दुर्बलता की चिकित्सा
(२०) भोजन से आरोग्य रक्षा और चिकित्सा

नोट—कमीशन देना कतई बन्द है। आठ या इससे अधिक पुस्तकें लेने पर डाक खर्च हम अपना लगा देते हैं।

—मैनेजर "अखण्डज्योति" कार्यालय, मथुरा।

१ मई सन १९४५ ई०

वैराग्य का तत्व ।

संसार की वस्तुओं में मालिकी के बिचार रखने से उनका दुरुपयोग होता है और संसार के समस्त पदार्थों को ईश्वर की वस्तु समझ कर उनका खजानची रहते हुए कार्य करने से सामग्री का उपयोग धर्म, न्याय और सुख के कार्यों में होता है। संसारिक वस्तुओं से वैराग्य करना, उनका ठीक प्रकार उपयोग करने की कला सीखना है । लेकिन आज तो कर्तव्य त्यागी को वैरागी कहने की प्रथा उठ खड़ी हुई है।

वैराग्य का सारा रहस्य निष्काम कर्मयोग में छिपा हुआ है । मानव जाति के सबसे महान दर्शन शास्त्र गीता ने निष्काम कर्म योग पर ही सबसे अधिक बल दिया है। संसार में हमें किस प्रकार व्यवहार करना चाहिए इसका ज्ञान प्राप्त करने के लिए हमें गीताकार का भावार्थ भली प्रकार समझने की चेष्टा करनी चाहिए। निष्काम और कर्म योग यह दो शब्द हैं । निष्काम से तात्पर्य अलग रहने, न मिलजाने, निर्लिप्त रहने से है। कर्म योग का तात्पर्य कर्तव्य धर्म पालन करने से है । जीव का धर्म यह है कि वह विकाश के निमित्त अहंभाव का प्रसार करे । अपनी आत्मीयता को दूसरों तक बढ़ावे, अपने स्वार्थों को दूसरों के स्वार्थ से जोड़ने के दायरे को बढ़ाता जाय । यह आध्यात्मिक उन्नति यदि वास्तविक हो तो वह आदमी अपनी शक्तियों का अधिक से अधिक भाग दूसरों की सेवा में लगाता है और कम से कम भाग अपने लिए रखता है। अर्थात् वह सेवा धर्म अपना लेता है और परोपकार में रत रहता है। उसका दृष्टिकोण संकुचित स्वार्थ पूरा करने का नहीं होता वरन् उदारता सहित परमार्थ को लिए हुए होता है । जो जितना हो परमार्थ चिन्तक है वह उतना ही बड़ा महात्मा कहा जायगा ।

हमारे पूर्वज ऋषि मुनियों को ठीक तौर से पहचानने में लोग बड़ी भूल करते हैं । उनकी दृष्टि इतनी ही पहुंचती है कि ऋषि मुनि नगरों से दूर जंगलों में रहते थे और फलफूल खाकर तथा वल्कल बसन पहनकर जीवन यापन करते थे। आजकल के साधु नामधारी तथाकथित वैरागी अपना वैराग्य उसी की नकल का बनाते हैं । जीवन की आवश्यकताऐं तो घटाते हैं पर बची हुई शक्ति को परमार्थ में नहीं लगाते, वरन् दंभ, आलस्य, प्रमाद और धूर्तता पर उतर आते हैं इसलिए उनका जीवन साधारण ग्रहस्थ से भी नीचे दर्जे का बन जाता है। यही कारण है कि साधु वेशधारी भिखमंगों को गली कूचों में हम कुत्तों की तरह दुरदुराता हुआ देखते हैं। ऋषि मुनियों के जीवन पर गंभीरता पूर्वक दृष्टिपात किया जाय तो उनकी सच्ची आत्मोन्नति के प्रमाण प्रत्यक्ष होजाते हैं । जंगलों में जाकर, रूखा सूखा खाकर, नंगे उघाड़े अजगरों की तरह वे नहीं पड़े रहते थे वरन् वहां जाकर जन साधारण की सेवा के लिए अधिक से अधिक काम करते थे। योगी द्रोणाचार्य ने शस्त्र विद्या में स्वयं पूर्णता प्राप्त की और अनेकों अधिकारियों को उस विद्या में पारंगत बनाया योगी चरक ने चिकित्सा शास्त्र को

न्यतम शोध की. योगी सुश्रुत ने शल्य क्रिया सर्जरी) का आविष्कार किया. पाणिनी ने याकरण शास्त्र निर्माण किया, आर्य भट्ट ने खगोल या के मर्मो की खोज करके ज्योतिष शास्त्र बनाया, ोगी वशिष्ठ ने अपने उपदेशों से राम जैसे राज-मार को मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान राम बना या, योगी परशुराम ने अपने प्रचंड बाहुबल से थ्वी को अत्याचारियों के रक्त से रंग दिया योगी ारद का प्रचार कार्य इतना प्रबल था कि वे एक ड़ी से अधिक एक स्थान पर नहीं ठहरते थे और स युग में जो कार्य अनेक अखबार और पब्लिक-सिटी आफीसर मिलकर नहीं कर पाते उस समय तना काम अकेले नारद कर लेते थे। योगी श्वामित्र ने अलग ही सृष्टि रचदी, योगी व्यास न ष्टादश महापुराण रचे जिनमें गीता जैसे अनेक त्न छिपे पड़े हैं। योगिराज कृष्ण ने महाभारत से संग्राम को कराया। योगी चाणक्य ने अर्थ ास्त्र और कूट नीति शास्त्र के अपूर्व विज्ञान की चना की। एक भी योगी का जीवन ऐसा नहीं पाया ा सकता जिसमें लोक सेवा के महान कार्य समन्वित हों। आत्म शक्ति की उन्नति के लिए वे योगाभ्यास ो करते थे पर वह होता इसी प्रकार था जैसे ातःकाल अधिक काम करने की शक्ति प्राप्त करने लिए हम रात को निद्रा लेते हैं, या कुश्ती लड़ने ा बल बढ़ाने के लिए दूध पीते हैं। रहन सहन को म खर्चीला वे इसलिए बनाते थे कि अपने निजी झटों को पूरा करने के लिए कम परिश्रम करना ड़े और अपनी अधिकांश शक्ति का उपयोग लोक ेवा के निमित्त हो सके। यह मानना भी गलत है क हमारे ऋषि महात्मा स्त्री पुत्रों को त्याग देते थे। च तो यह है कि शायद ही कोई ऐसा ऋषि रहा जिसने अविवाहित जीवन विताया हो। अन्यथा ाण साक्षी हैं कि सभी ऋषियों के स्त्रियां और तानें मौजूद थीं। शंकर जैसे योगेश्वर के दो विवाह ए और उनके बाल बच्चे भी मौजूद थे।

महर्षियों के जीवन पर थोड़ा सा प्रकाश इसलिए डाला गया है कि नकलची लोग पूरी बात को समझें और तब उसका अनुकरण करें। बाल बच्चों को भटकता छोड़ कायरता के साथ कर्तव्य धर्म की अवहेलना करते हुए घर त्याग कर भाग जाना और भगवान का भजन करने की झूंठी आत्म बंचना के बहाने भीख टूक खाकर अकर्मण्यता पूर्वक जीना न तो योग है, न सन्यास, न स्वार्थ है, न परमार्थ। यह एक प्रकार की आत्म हत्या है जिसे अल्प शिक्षित या अशिक्षित व्यक्ति, स्वार्थी कनफूका' गुरुओं के बहकावे में आकर स्वीकार कर लेते हैं और अपने बहुमूल्य जीवन की आलस्य और प्रमाद की छुरियों से निर्दयता पूर्वक हत्या कर डालते हैं। वैसे तो आज भी थोड़े बहुत सच्चे महात्मा इन साधु वेश धारियों के बीच मिल सकते हैं जो स्वार्थ की अपेक्षा परमार्थ को महत्व देते हैं और अहंकार के नशे में इठे फिरने की बजाय नम्रता और सेवा का परिचय देते हैं, ऐसे महापुरुष उसी प्रकार पूजनीय हैं जैसे कपिल कणाद। हमारा विरोध तो उन भिखमगों से है जो वैराग्य के पवित्र नाम को कलंकित करके प्रमाद की उपासना करते हैं और जन साधारण के मन में यह झूठी धारणा पैदा करते हैं कि वैरागी वही है जो घर बार छोड़ कर निरुद्देश्य मारा मारा फिरे और भजन की झूठी आत्म बंचना करता हुआ स्वार्थी जीवन बितावे।

जीवन विकाश के लिए अहंभाव का प्रसार आवश्यक है। परमार्थ में स्वार्थ को घोलते जाना, अपने लिए कम दूसरे के लिये ज्यादा की उदार वृत्ति को अपनाते जाना बस एक मात्र यही जीव का धर्म है। धर्म के सारे अङ्ग उपाङ्ग इसी परिभाषा के अन्तर्गत आजाते हैं। त्याग, सहानुभूति, प्रेम, दया, उदारता आदि सत् वृत्तियां विकाश धर्म की किरणें हैं। सम्पूर्ण धर्म शास्त्र इसी एक विन्दु के आस पास उसी प्रकार घूम रहे हैं जैसे ध्रुव के चारों ओर अन्य नक्षत्र घूमते हैं। आप संसार से

विरक्त रहिए पर प्राणियों को आत्म तुल्य समझ कर उनकी अधिकाधिक सेवा के मार्ग पर बढ़ते चलिये। स्त्री के, पुत्र के, कुटुम्बियों के, शरीरों को नाशवान समझिए पर उनके जीव की उन्नति में भरपूर सहायता कीजिए। उनकी आवश्यक सुविधाओं का उसी प्रकार ध्यान रखिये जैसे अपनी सुविधा का रखते हैं। इस आत्म प्रसार के दायरे को क्रमशः बढ़ाते चलिए जिन सुखों को प्राप्त करने की इच्छा अपने लिए करते हैं उन्हीं की दूसरों के लिए इच्छा करिए। सहृदय माता घर में बने हुए खीर खांड़ के भोजन पहले अपने बालकों को कराती है तब बचा खुचा आप खाती है। आप जब विकाश धर्म का पालन करेंगे तो ऐसी ही उदार एवं सहृदय माता बन जावेंगे। विश्व के अन्य प्राणी आपके बालक होंगे। आपका सारा वैभव अल्प बुद्धि वाले, अल्प साधन वाले, अल्प शक्ति वाले, अल्प वैभव वाले, प्राणियों के काम आवेगा तब कहीं बचा खुचा भौतिक सुख आप अपने लिए चाहेंगे। खीर खांड़ खाकर प्रसन्न हुए बच्चों का प्रफुल्ल मुख देखकर माता का हृदय आनन्द से भर जाता है अशक्त प्राणियों की सेवा में अपना वैभव उत्सर्ग कर देने के पश्चात् आपके अन्तःकरण में आनन्द की लहरें उठने लगेगीं।

नश्वर संसार का उपदेश है कि वैरागी बनिए। वैरागी का अर्थ है संसार के पदार्थों की नश्वरता को समझते हुए उनका उपयोग विकाश धर्म की पूर्ति के लिए परमार्थ में कराना। स्वार्थ को, लोभ को, तृष्णा को-कम करके परमार्थ के विचार और कार्यों में निरन्तर लगे रहना ही सच्चा वैराग्य है।

मनुष्य विवेक शील और न्याय परायण होने के कारण मनुष्य है। किन्तु प्रेम और उदारता की भावनाओं को विकसित करके वह देवता भी बन सकता है।

× ×

स्वयं विचार करना सीखिए।

(डाक्टर दुर्गाशंकर जी नागर सम्पादक "कल्पवृक्ष")

जब तक तुम दूसरों के बल पर खड़े रहोगे, दूसरों की सम्मति से कार्य करते रहोगे, अपने मस्तिष्क को दूसरे के आधीन कर दोगे; अपने को महत्त्वहीन समझोगे और अपने आप विचार करना नहीं सीखोगे, तो तुम्हारा मस्तिष्क जड़ हो जायगा, बुद्धिमंद हो जायगी। जब तक मनुष्य दूसरों पर निर्भर रहता है, तब तक वह अपनी शक्तियों को नहीं पहिचानता। जिस शक्ति से मनुष्य नई नई बातें निकालता है अविष्कार करता है; उसका विकास स्वयं विचार करने से होता है।

अपना विचार कार्य स्वयं अपने आप करना, दूसरों पर आश्रित न रहना, अपने पैरों आप खड़े होना अपनी विचार शक्ति को विकसित करना और शरीर तथा मन को सशक्त और पुष्ट बनाना जीवन तत्त्व की वृद्धि करना है।

जो अपने मस्तिष्क के काम को बंद कर देता है, वह अपना नाश आप करने लगता है। मस्तिष्क की वृद्धि, ज्ञानेन्द्रियों के द्वारा जो भिन्न भिन्न अनुभव मन में प्रवेश करते हैं उनको एकत्रित कर नवीन भावना, नवीन विचार, नवीन मानसिक स्थिति, नवीन अभिप्राय प्रकट करने से ही होती है।

प्रतिदिन सूर्योदय से पूर्व वायु सेवन के लिए बाहर जंगल में चले जाना चाहिए। सिर खोलकर सिर तथा छाती को सीधी तथा समान करके घूमना चाहिए। प्रातःकाल की ठंडी हवा से तुम्हारा दिमाग ताजा हो जायगा। फिर किसी ऊँचे स्थान पर बैठ कर दीर्घ श्वास-प्रश्वास की क्रिया करनी चाहिए। ऐसा करने से विचारने तथा सोचने की शक्ति अधिक प्राप्त होगी। इस प्रकार श्वास प्रश्वास की क्रिया करने से तुममें प्राण-तत्त्व का अधिक प्रवेश होगा। मस्तिष्क के भूरे रंग के द्रव्य को पुष्कल शुद्ध रक्त पोषण के लिए प्राप्त होगा।

तुम महान हो।

(ले०-डा० रामचरण महेन्द्र एम. ए. डी लिट डी. डी.)

तुम्हारा वास्तविक स्वरूपः—तुम्हारे हिस्से में स्वर्ग की अगणित विभूतिएँ आई हैं न कि नर्क की कुत्सित यातनाएँ। और तुमको वही लेना चाहिये जो तुम्हारे हिस्से में आया है। स्वर्ग तुम्हारी ही सम्पत्ति है। शक्ति तुम्हारा जन्म सिद्ध अधिकार है। तुमको केवल स्वर्ग में प्रवेश करना है तथा शक्ति का अर्जन कर लेना है। स्वर्ग में सुख ही सुख है। वहां आत्मा को न तो किसी बात की चिन्ता रहती है न किसी प्रकार की इच्छा। वहाँ तो अखण्ड शांति. अखण्ड पवित्रता तथा अखण्ड तृप्ति है। तूफान मचाने वाले विकारों की आसुरी लीला, या भय के भूतों का लेश भी वहाँ नहीं है। वह स्वर्ग इस संसार में ही है। वह तुम्हारे भीतर है। उसे खोजने का प्रयत्न करो. अवश्य तुम्हें प्राप्त हो जायगा।

संसार में फैले हुए पाप, निकृष्टता, भय शोक तुम्हारे हिस्से में नहीं आये हैं। मोह, शङ्का, क्षोभ की तरंगें तुम्हारे मानस-सरोवर में नहीं उठ सकतीं क्योंकि विक्षोभ उत्पन्न करने वाली आसुरी प्रवृत्तियों से तुम्हारा कोई सम्बन्ध नहीं। संशय तथा शंकाओं से दब कर तुम्हें इधर उधर मारा मारा नहीं फिरना है। क्षण क्षण उद्विग्न तथा उत्तेजित नहीं होना है। शान्त तथा पवित्र आत्मा में क्लेश, भय, दुःख, शङ्का का स्पर्श कैसे हो सकता है? यदि तुम इन कुत्सित वस्तुओं को अपनाओगे तो अवश्य ही ये तुम्हारे गले पड़ेंगे और तुम्हारे जीवन की. तुम्हारी महत्त्वाकांक्षा की, तुम्हारे भावी जीवन की इतिश्री कर देंगे।

तुम्हारा मनुष्य होना ही इस बात का प्रमाण है कि तुम्हारी शक्ति अपरिमित है। संसार की ओर आँख उठाकर देखो! प्रकृति पर मनुष्य का अधिपत्य है; बड़े से बड़े पशु उसके इङ्गित पर नृत्य करते हैं। ऊँची से ऊँची वस्तु पर उसका पूर्ण आधिपत्य है। उससे शक्तिशाली प्राणी पृथ्वी पर दूसरा नहीं है। उसकी बराबरी करने वाले अन्य जीव की सृष्टि नहीं हुई। मनुष्य पशुओं का राजा है।

एक कवि कहता है,—"मनुष्य! तू कितना शक्तिशाली है! तेरी सृष्टि में उस दैवी कलाकार ने अपनी कला की इतिश्री करदी है।"

"तेरे प्रत्येक भाग में शक्ति का अस्तर लगाया गया है, और वह इसलिए कि तू निर्भयता से पृथ्वी पर राज्य कर सके।"

"तेरे बल का पारावार नहीं; जिन साधनों से सम्पन्न करके तुझे पृथ्वी पर भेजा गया है वे अचूक हैं; उनके आगे कोई ठहर नहीं सकता।"

'तुझमें शारीरिक शक्ति का भण्डार है, तेरे हाथ. पांव, छाती, पट्ठों में शक्ति इसीलिए दी गई है कि कोई तुझे दबा न सके; तेरी बराबरी न कर सके; जहां तेरी शारीरिक सम्पन्नता कार्य न करे, वहां कार्य के लिए तुझे बुद्धि की असीम शक्तियां प्रदान की गई हैं। इनकी ताक़त अनेक इन्द्रवज्रों से उत्कृष्ट है। इनके आगे दूसरे की नहीं चल सकती।"

"तुझमें असीम सामर्थ्य वर्तमान है; शक्ति का वृहत पुञ्ज भरा पड़ा है। तुझे किसी के आगे हाथ पसार कर मांगने की आवश्यकता नहीं है। तुझे किसी देव की कृपा सम्पादन की आवश्यकता नहीं है। संसार के क्षुद्र आघात प्रतिघातों में इतना हिम्मत नहीं कि तुझे विचलित कर सकें।"

'तू निष्पाप है; तू आनन्द है; तू अविनाशी आत्मा है तू सच्चिदानन्द रूप है, तू शोक रहित, भय रहित, नित्य मुक्त स्वभाव वाला देव है। न दुःख, न क्लेश, न रञ्ज, न भूत, न प्रतिद्वन्द्वी—तुझे अपने जन्म जाति अधिकारों से कोई विचलित नहीं कर सकता। वासनाएँ तुझे मजबूर नहीं कर सकतीं।"

"तू ईश्वर का महान् पुत्र है। ईश्वर की शक्ति का ही तेरे अंदर प्रकाश है। तू ईश्वर को ही अपने भीतर से कार्य करने दे। ईश्वर को स्वयं प्रकाशित

होने दें। ईश्वर जैसा ही बन कर रह । ईश्वर होकर खा, पी, और ईश्वर होकर ही साँस ले, तभी तू अपनी महान् पैत्रिक सम्पत्ति का स्वामी बन सकेगा।

कुछ मनुष्यों की भूलः—परमेश्वर ने मनुष्य को परम निर्भय बनाया था। वह पशु जगत् का अधिपति डरपोक रह कर क्यों कर राज्य कर सकता था? समाज के प्रतिबंधों ने उसे डरपोक बना दिया है।

संसार के असंख्य व्यक्ति आज जिस मानसिक व्यथा से क्षुब्ध हो रहे हैं वह मनोजनित रोग-भय है। मनुष्य के मन की निर्बल आदतों को जन्म देने वाला अन्य कोई नहीं केवल भय ही है। अविश्वास, अकर्मण्यता, अधैर्य, ईर्षा, असन्तोष, मन की चञ्चलता तथा ऐसे अनेकों मनोजनित रोग केवल भय की ही विभिन्न स्थितिएँ हैं। भय से उद्भूत कुत्सित मनोवृत्तियां उपयोगी पुरुषार्थ को जड़ मूल से नष्ट कर देती हैं। केवल एक भय को अंतःकरण से उखाड़ फेंकने से अनेक अवगुण स्वय विनष्ट हो जाते हैं।

शैक्सपीयर निर्देश कहता है—"यदि तुम अपनी कमजोरी से, अपने शत्रुओं से, अपनी निर्बलताओं से डरोगे; तो तुम्हारे शत्रुओं को तुम्हारे विरुद्ध बल प्राप्त होगा तथा तुम्हारी भूलें स्वतः तुम्हारे ही सामने तुम्हारे खिलाफ़ युद्ध करने को प्रस्तुत हो जायंगी।"

मनुष्य की महत्त्वाकांक्षाओं को चूसने वाला भय महाराक्षस है। भय की मनोस्थियाँ हमारे शुभ्र विचारों, साहस पूर्ण प्रयत्नों, तथा उत्तम योजनाओं को एक क्षण में चूर्ण चूर्ण कर डालती हैं। मिथ्या भय की भावना ने सहस्रों जीवनों को नष्ट-भ्रष्ट कर धूल में मिला दिया है। स्निग्ध पुष्प के समान विकसित होने वाले अनेक सद्गुण भय की एक ठेस पाकर क्षत विक्षत हो गये हैं।

आज के अनेक पुरुष किसी आती हुई आपदा की भावना के कारण आवेगपूर्ण रहते हैं। भविष्य की चिन्ता ही हमारे जीवन को कंटकाकीर्ण बनाती है। जिन चिन्ताओं के कारण हम महीनों पहिले विक्षुब्ध रहते हैं, वह कभी कभी बिल्कुल आती ही नहीं, तथा कभी स्वयं अपने आप टल जाती है।

प्रकृति इतनी दयालु, इतनी कुशल, इतनी शक्तिशालिनी है कि उसने आने वाली आपत्तियों को झेलने की शक्ति प्रचुर मात्रा में हमें प्रदान की है, अपनी अज्ञानता के कारण हम इस कोष को खोलते नहीं।

भय एक स्वार्थी विकार है।। सैकड़ों नवयुवकों के आशापूर्ण हृदयों को इसने अंधकारपूर्ण बनाया है। भय के साथ मनुष्य अभ्युदय के मार्ग पर नहीं आरूढ़ हो सकता। भय आशा के अंकुर को अंकुरित नहीं होने देता तथा नित्य इच्छा शक्ति को निर्बल किया करता है।

भय की उत्पत्ति- संशय भय का बीज है। अश्रद्धा तथा संशय (Indecision) मिलकर शक या शुबा (Doubt) उत्पन्न करती हैं। यही बढ़ते बढ़ते भय (Fear) में परिणत हो जाता है। भय का विकास क्रमशः होता है। संशय का बीज क्षुद्र कठिनाइयों तथा अड़चनों के योग से परिवर्द्धित होता है। कितनी ही बार तो यह इतना सूक्ष्म होता है कि हमें बोध भी नहीं होता। कब इसका बीज लगा, कब यह विष वृक्ष विकसित हुआ यह पूर्णत्व पर ही ज्ञान होता है।

भय की सन्तानें—भय की प्रथम सन्तान चिंता है। चिंता तथा चिता का बड़ा सम्बन्ध है। दूषित अंतःकरण का व्यक्ति चिंता की कालिमा से कलंकित रहता है। ऐसे अंतःकरण में अपने अकल्याण की अनेक कल्पनाएँ उठा करती हैं। चिन्ता के कारण मनुष्य में कायरता तथा भीरुता का पदार्पण करती हैं। ये मनुष्य में भारी दोष माने जाते हैं। चिन्ता मनुष्य के उत्साह को नष्ट कर डालती है।

भय की दूसरी सन्तान है अकर्मण्यता। उस

विषैले प्रभाव से हमारी कोई भी सद्प्रेरणा, कोई भी आकांक्षा, तथा कोई भी नवीन प्रयोग सफल नहीं हो पाता। मन की सद् कल्पनाएँ जहाँ की तहाँ विमूर्छित हो जाती हैं। अकर्मण्यता का प्रवेश होते ही "मैं कार्य क्षमता रखता हूं" "मैं संसार को हिला डालूंगा" "मुझमें पर्य्याप्त शक्ति है" इत्यादि दृढ़ निर्देशों (Suggestions) के स्थान पर "मैं नहीं कर सकूंगा", मेरा साहस नहीं होता, अरे, मेरे पास अमुक वस्तु तो है ही नहीं अब काम कैसे होगा, यह तो मुझसे न हो सकेगा जो भाग्य में लिखा है वही होगा, करने या न करने वाला मैं कौन होता हूं।"—इस प्रकार के संक्षय घर कर लेते हैं।

जब एक बार तुम "मैं नहीं कर सकूंगा"—कहते हो तो तुम्हारा अव्यक्त (Unconscious mind) मन एक शीघ्र ग्राहक फोटोग्राफी प्लेट (Sensitive plate) की तरह उस चित्र को पकड़ लेता है। फिर जितने भी अवसर तुम्हें प्राप्त होते हैं सब में विकृत चित्र दिखाई देते हैं। जैसे २ यह भावना दृढ़ होती जाती है, वैसे वैसे अवस्था असाध्य होती जाती है।

आत्महीनता की ग्रन्थि—भय जब स्वभाव का एक विशिष्ट अंग बन जाता है तो मनः प्रदेश में एक प्रकार की ग्रन्थि (Complex) का निर्माण होता है। इस जटिल ग्रन्थि द्वारा मनुष्य की प्रगति में बड़ी वाधा पहुंचती है। अज्ञात मन में स्थित रहने के कारण ऐसा व्यक्ति खुले आम उसका अनुभव नहीं करता। कोई उससे कहे कि तुम अपने आप को कमजोर, दीन, हीन समझते हो, तो वह कदापि विश्वास नहीं करता। समाज के व्यवहार में उक्त ग्रन्थि की जो प्रतिक्रियाएँ (Reactions) होती हैं उनके द्वारा ही हीनत्व की भावना से ग्रस्त व्यक्ति के स्वरूप का ज्ञान होता है।

हीनत्व की ग्रन्थि की प्रतिक्रियाएँ--

प्रत्येक व्यक्ति के दैनिक जीवन में इस ग्रन्थि के फल स्वरूप अनेक प्रतिक्रियाएँ हुआ करती हैं। मैंने अनेक ऐसे नवयुवक देखे हैं, जो लज्जावश किसी भयानक दोषी की भाँति मुँह छिपा दारुण मानसिक यातना, घोर अपमान, निरादर एवं ग्लानि का अनुभव किया करते हैं। इस दुर्बलता की ग्रन्थि के कारण देश के लाखों हारे सार्वजनिक अथवा सामाजिक क्षेत्र में पदार्पण नहीं कर पाते। उनकी आकांक्षाएँ, महत्वाकाँक्षाएँ, और उमंगे अधखिली कलिका की भांति असमय में ही मुर्झा जाती हैं।

कितने ही व्यक्ति विक्षिप्त जैसे कार्य भी इसी ग्रन्थि के कारण किया करते हैं। बेढंगे व्यवहार, अटकना, अग प्रत्यंगों का अप्राकृतिक संचालन प्रायः इसी ग्रन्थि के कारण होते हैं। सनकीपन (Eccentricity) तथा अनेक विवेकशून्य कार्य इसी की प्रतिक्रियाएँ हैं।

एक व्यक्ति के विषय में यह विख्यात हुआ कि वह बड़ा अच्छा गाता है। लोग उससे गाने के लिए आग्रह करते किन्तु वह टालमटोल करता। भाँति २ के बहाने बनाता। बाद में ज्ञात हुआ कि वह गाना नहीं जानता था। साथ ही आत्महीनता की ग्रन्थि से ग्रसित था। टालमटोल तथा बहानेबाजी भी आत्म हीनता की प्रतिक्रियाएँ हैं।

———

दूसरों का सौभाग्य देख कर ईर्षा मत करो। दुनियां में ऐसे लोगों की भी कमी नहीं है जो तुम्हारा स्थान पाने के लिए लालायित हैं।

× × ×

वह मनुष्य विवेकवान है जो भविष्य से न तो आशा रखता है और न भयभीत ही होता है।

× × ×

दानी होने से पहले विचारवान बनना अत्यन्त आवश्यक है। बिना विचारे अनाधिकारी को दान देना धन का दुरुपयोग करना है।

× × ×

गायत्री का अर्थपूर्ण संदेश।

गायत्री की मन्त्र का शाब्दिक अर्थ भी इतना महत्वपूर्ण है कि उसकी महत्ता असाधारण प्रतीत होती है। एक एक शब्द ऐसा नपा तुला है कि मानव जीवन में जिन तत्वों की सर्वोपरि आवश्यकता है उन्हीं की ओर मन्त्र में ध्यान दिलाया गया है उन तत्वों को प्राप्त करने और सुरक्षित रखने की प्रेरणा की गई है।

अब आइये, गायत्री मन्त्र के एक एक शब्द का अर्थ करें :—

ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियोयोनः प्रचोदयात्।

ॐ (ब्रह्म) भूः—(प्राण स्वरूप) भुवः—(दुःख नाशक) स्वः—(सुख स्वरूप) तत्—(उस) सवितुः—(तेजस्वी-प्रकाशवान्) वरेण्यं—(श्रेष्ठ को) भर्गो—(नाशक) देवस्य—(देने वाले को, दिव्य को) धीमहि—(धारण करें) धियो—(बुद्धि) यो—(जो) नः—(हमारी) प्रचोदयात्—(प्रेरित करे)

अर्थात्—उस सुख स्वरूप, दुःख नाशक, श्रेष्ठ, तेजस्वी, पाप नाशक, प्राण स्वरूप ब्रह्म को हम धारण करते हैं। जो हमारी बुद्धि को (सन्मार्ग की ओर) प्रेरणा देता है।

"हम अपने अन्दर प्राण स्वरूप ब्रह्म को धारण करें", यह इस मन्त्र का मुख्य उपदेश है। असंख्य मनुष्य चलते फिरते पुतले की तरह जीते हैं। उनमें जान तो है पर प्राण नहीं है। निष्प्राण व्यक्ति, 'जीवित मृतक'—बन कर जीवन को जीना मनुष्यता को कलंकित करना है। ऐसा जीवन भू भार बढ़ाना है। जीव परमात्मा का अंश है उसे अपने आत्म स्वरूप को पहचान कर आत्म गौरव के अनुरूप नीति से जीवित रहना चाहिये।

प्राण युक्त—जीवट दार—महानता से भरा हुआ, जीवन-जीना मनुष्य का कर्त्तव्य है। इस कर्त्तव्य की ओर ही वेद माता गायत्री ने संकेत किया है।

ब्रह्म—जिसको प्राप्त कराने के लिये योगी जन सदा प्रयत्न करते रहते हैं। वह ब्रह्म-कोई दूर की वस्तु नहीं है, वह प्राण स्वरूप है। जिसने प्राण को धारण कर लिया। जिसके पास प्राण है उसके पास ब्रह्म है। इस 'जान' और 'प्रान' के भेद को भली प्रकार समझने की आवश्यकता है। जान रहने से चलना फिरना, सोना, उठना, बैठना, आहार निद्रा, भय, मैथुन आदि की क्रियाएँ होती रहती हैं वृक्ष, बनास्पति, उद्भिज, कीट पतंग आदि के जान होती है यह जानदार होते हैं परन्तु जिस प्राण का "भूः" शब्द में संकेत किया गया है वह भिन्न प्रकार है। वह मानवोचित्त महत्ताओं का, आध्यात्मिक विशेषताओं का, द्योतक है। यह तत्व जिसमें जितनी अधिक मात्राओं में होता है, वह उतना ही उच्च उन्नति शील गिना जाता है। शास्त्रों में ब्रह्म हत्या को सर्वोपरि पाप माना गया है, वह इसलिये कि जिसमें "भूः" तत्व, प्राण तत्व, आध्यात्मिक उच्च तत्व, अधिक है, वह अति मानव है महा पुरुष है, साधारण जानदार जीवों से अधिक ऊँचा है, अज्ञानी और अविवेकी मनुष्यों से भी अधिक ऊंचा है। ब्रह्म को—सत्प्राण को—अधिक मात्रा में धारण करने वाला ही ब्राह्मण है। ऐसे ब्रह्मभूत ब्राह्मण की हत्या को 'सर्वोपरि पाप" शास्त्रों ने ठीक ही कहा है। इन अति मानव ब्राह्मणों को सत्कारणीय और पूजनीय भी ठीक ही कहा है।

यों तो 'जान' को भी प्राण कहते हैं। जानदार जीव को, प्राणी कहा जा सकता है परन्तु 'भूः" शब्द द्वारा जिस प्राण का गायत्री मन्त्र में उल्लेख है वह ब्रह्म स्वरूप है। इस प्राण को समझने में किसी प्रकार का भ्रम एवं सन्देह न रहे इसलिये उसके लक्षणों को भी मन्त्रकार ने स्पष्ट कर दिया है। दुःख नाशक, सुख स्वरूप, तेजस्वी, प्रकाशवान, श्रेष्ठ, पाप नाशक, देने वाला—दिव्य, यह विशेषताएँ

जिस प्राण में हों वहीं भूः है, इन गुणों का अन्तःकरण में सुदृढ़ समावेश हो जाना ही ब्रह्म-प्राप्ति है।

यदि हम गायत्री के उपदेशानुसार 'भूः' तत्व रूपी ब्रह्म को प्राप्त करना चाहते हैं तो हमें उन गुणों को ढूंढ़ ढूंढ़ कर अपने अन्दर भरना होगा जो कि उसके गुण हैं। जिसमें असुरता के गुण अधिक हो जाते हैं वही असुर कहलाने लगता है, यक्ष, गन्धर्व किन्नर योगी, यती, ब्रह्मचारी पिशाच, हत्यारा, गायक, दुराचारी आदि विशेषण गुणों के आधार पर मिलते हैं, जिसमें जो गुण अधिक हो जाते हैं उसको उसी नाम से पुकारा जाने लगता है उसके अन्दर दुराचार, पिचाचत्व ब्रह्मचर्य आदि तत्वों की स्थिति मान ली जाती है। भूः तत्व धारण करना कोई आभूषण, वस्त्र सूत्र, कवच, तिलक, कंठी आदि धारण करना नहीं है जिसमें भूः तत्व के गुण आगये समझ लीजिये कि उसमें प्राण स्वरूप ब्रह्म की धारणा हो गई। वायु में शीतलता, शरबत में मिठास, मिर्च में तीखापन दिखाई नहीं पड़ता, परन्तु गुणों को देख कर यह कहा जाता है कि इसमें यह पदार्थ विद्यमान है, इसी प्रकार भूः तत्व की धारणा हुई है या नहीं यह बात आंखों से दिखाई नहीं देती तो भी उस तत्व के गुणों का सामवेश हुआ है या नहीं यह देख कर आसानी से जानी जा सकती है।

गायत्री के मतानुसार ब्राह्मी—स्थिति वह स्थिति है जिसमें मन से दुखों की समाप्ति हो जाती है और सुख का अनुभव होता रहता है जिससे मन तेजस्वी और प्रकाशवान् बनता है, कायरता, भय, झिझक को हटा कर स्वतन्त्रता की ओर बढ़ता है, अन्धकार अज्ञान और अविवेक को छोड़ कर प्रकाश की ओर चलता है। जीवन को वहिर्मुखी बना कर इन्द्रिय भोगों की सामिग्री जुटाने तथा नीच वृत्तियों की तृप्ति करने में न लग कर उद्देश्य मय, सिद्धान्त सम्मत, कर्त्तव्य धर्म से परिपूर्ण, अन्तर्मुखी बनने की श्रेष्टता ग्रहण करता है। वह पाप भावनाओं को अपवित्र विचार और कार्यों को, अपने पास नहीं फटकने देता। संसार को कुछ देते रहना, दूसरों की सेवा करते रहना, परोपकार में रत रहना, उसका स्वभाव बन जाता है। देव लोग दिया करते हैं - साधारण वस्तुए नहीं—दिव्य वस्तुएँ; सद्ज्ञान, सदुपदेश, सन्मार्ग का प्रसार जो अपनी कथनी और करनी दोनों के द्वारा करता है वह देव है, ऐसा देवत्व भी भूः तत्व के धारण करने वालों में होता है।

हमें तुच्छ, मायाबद्ध, कुटिल, खल, कामी, नश्वर आदि विशेषणों वाले "जीव भाव" से ऊंचा उठा कर सत् चित्, आनन्द मयी ब्राह्मी—स्थिति में जागृत होना चाहिये। हम साधारण से सांसारिक हानि लाभों से अपने आपको दुखी न बनावें, भौतिक पदार्थों का स्वभाव ही बिगड़ना, बदलना और परिवर्तन होना है, इस स्वभाव का कायम रखना सृष्टि संचालन के लिये अनिवार्य है! यदि वस्तुएँ ज्यों की त्यों एक ही अवस्था में बनी रहें तो आगे का निर्माण कार्य रुक जायगा। यदि धन जहां का तहां रुक जाय तो सारे व्यापार बन्द हो जांय, यदि मृत्यु बन्द हो जाय तो नये प्राणी भी उत्पन्न न होंगे, यदि खेत में वर्तमान पौदे ही खड़े रहें तो आगे की फसल कैसे उत्पन्न की जा सकेगी? सृष्टिकर्ता ने सृष्टि संचालन के लिये परिवर्तन का नियम बनाया है इस नियम के अनुसार हमारी किसी वस्तु या स्थिति में अरुचि कर परिवर्तन होता हो तो उस सीधी सी बात के लिये दुखी न होना चाहिये वरन् अपनी स्वाभाविक सच्चिदानन्द स्थिति के कारण सदा प्रफुल्ल, प्रसन्न, आनन्दित रहना चाहिये। 'भुवः' और स्वः शब्दों का हमारे लिये यही उपदेश है।

सवितुः—सूर्य के समान तेजस्वी, प्रकाशवान्, हम बनें। अन्धकार चाहे जितना ही बड़ा क्यों न हो चाहे वह दिग्दिगन्त में सुदूर देशों तक फैला हुआ हो, असंख्य प्राणी उस अन्धकारा में होशहवाश

छोड़ कर मूर्छित पड़े हुए हों, परन्तु फिर भी उसकी परवाह न करके उसे नष्ट करने का ही प्रयत्न करना चाहिये। सविता-सूर्य-अकेला ही अन्धकार से लड़ता है। कोई दूसरा साथी उसके साथ उसके कार्य में सहयोग देने नहीं आता तो भी वह अकेलेपन की परवाह न करके अपना काम जारी रखता है। पाप, अन्याय, अत्याचार, अविचार, अन्ध-विश्वास, हानिकारक-रीति-रिवाज, यह सब अन्धकार के रूप हैं, हमें तेजस्वी सविता बन कर इनका निवारण करने का प्रयत्न करते रहना चाहिये। अन्धकार का विस्तार अधिक देख कर डरने, पीछे हटने या कायरता मन में लाने की कुछ भी आवश्यकता नहीं है। निर्भीकता धारण करके तेजस्वी सूर्य के समान यथा शक्ति इनका विरोध ही करते रहना चाहिये। अविचार या अन्याय की बड़ी से बड़ी शक्ति हो तो भी उसके विपक्ष में सत्य का प्रकाश करना चाहिये। हमें अपने मन के भीतरी कोनों में, अन्धकार में, छिपे हुए काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद मत्सर आदि शत्रुओं को अपने आत्मिक प्रकाश द्वारा ढूंढ़ निकालना चाहिये और अपनी दृढ़ तेजस्विता के साथ उन्हें मन के पवित्र प्राङ्गण में से निकाल कर बाहर कर देना चाहिये। हमारा सांसारिक जीवन निर्भीक, स्पष्ट, खरा, एवं तेजस्वी होना चाहिये। हमारे विचार और कार्यों से दूसरों के प्रकाश मिले, अपने बौद्धिक प्रकाश द्वारा उपयोगी तथ्यों को ही चुनें 'सवितुः' शब्द का हमारे लिये यही संकेत है।

वरेण्यं—श्रेष्ठ। हम श्रेष्ठ बनें। पैसे की सर्व भक्षी हविस ने आदमी को शैतान बना दिया है। जिव्हा के चटोरेपन के ऊपर करीब आधी जिन्दगी बलिदान कर दी जाती है। भोगविलासों की तृष्णा में पतंगे की तरह लोग जले जा रहे है। भोग सामिग्री जुटाना यही एक कार्यक्रम लोगों के सामने है, पाशविक वृत्तियों को तृप्त करने तक की ही अभिलाषाएँ मनोभूमि में उठती है। यह वहिर्मुखी प्रवृत्तियां अभद्र हैं, अश्रेयष्कर हैं, श्रेष्ठता से रहित हैं। गायत्री कहती है कि हम वरेण्य प्राण का धारण करें, अपने अन्दर श्रेष्ठता, महानता, विकसित करें। आत्मा परमात्मा का अंश है, इसका अवतार परमात्मा के कार्यक्रम को पूरा करने के लिये इस संसार में होता है। जीवन धारण करने का अभिप्राय प्रभु की पवित्र सृष्टि में उसकी आज्ञाओं और इच्छाओं का सन्तुलन ठीक रखना और दूसरों से रखवाना है। जीवन कायम रखने के लिये भौतिक पदार्थों की इतनी कम मात्रा में आवश्यकता है कि बिना किसी प्रकार का पाप किये बड़ा आसानी के साथ, सुविधा पूर्वक, पूरी ईमानदारी के साथ उन्हें कमाया जा सकता है। यह कहना गलत है की पेट के लिये पाप करते हैं। पेट की मर्यादा इतनी छोटी है कि वह बिना पाप के आसानी से भर सकता है—पाप तो तृष्णा के लिये किया जाता है। अनन्त तृष्णाओं के लिये अनन्त पाप करते जाना अश्रेष्ठ है। हमें श्रेष्ठ बनना चाहिये। संयमित, अपरिग्रही, संतोषी, रह कर जीवन को उच्च, उद्देश्यमय, सिद्धांत सम्मत, कर्तव्य धर्म से परिपूर्ण बनाना चाहिये। आध्यात्मिक सत्सम्पत्तियां एकत्रित करने के लिये वैसा ही उद्योग करते रहना चाहिये जैसा कि माया बन्धन में बँधे हुए जीव, माया के लिये खून पसीना एक करते हैं। यही श्रेष्ठता है—हमें ऐसा ही 'वरेण्य' होना चाहिये। (अपूर्ण)

———

जो अपने कर्तव्य का विचार नहीं करते और अपने उत्तर दायित्वों को पूरा करने का शक्ति भर प्रयत्न नहीं करते वे मनुष्य रूप में पशु हैं।

× × ×

यदि सच्ची शान्ति की स्थापना करनी है तो उसकी-पूरी कीमत चुकानी होगी। शान्ति की पूरी कीमत यह है कि जो बलवान हैं वे लोभी होना छोड़दें और जो निर्बल हैं वे बलवान बनना सीखें।

× × ×

अध्ययन तथा मनन।

(ले०—श्रीमती प्रीतमदेवीमहेन्द्र, साहित्यरत्न)

अध्ययन तथा अनुभव इन दो साधनों से ज्ञान प्राप्त होता है। इसमें से अध्ययन से जितना ज्ञान एक वर्ष में प्राप्त हो सकता है उतना अनुभव से बीस बाइस वर्ष में प्राप्त हो सकता है जो अनुभव से ज्ञान प्राप्त करता है उसे बड़ा कष्ट उठाना पड़ता है, घोर तकलीफ़ों का सामना करना पड़ता है तब कहीं दो चार सत्य के कण (Particles Truth) प्राप्त होते हैं इसके विपरीत अध्ययन से सहज में ही यथेष्ट ज्ञान संग्रह किया जा सकता है।

अध्ययन में महत्त्व गंभीरता का है। आप घंटों बैठे पढ़ते रहें और हाथ कुछ न लगे। या थोड़ी देर पढ़ें और जो कुछ पढ़े उसे दृढ़ता से अन्तर्मन में दृढ़ कर लें। जो व्यक्ति अध्ययन के साथ मनन का उपयोग करता है वह शक्ति का उचित उपयोग करता है। लंबा चौड़ा बेमतलब का अध्ययन वैसा ही है जैसा खाया तो बहुत जाय पर पचे दो चार रत्ती भर। ऐसा अध्ययन व्यर्थ है।

आप जो पढ़ें उस पर विचार करें। सोचें कि बात कहाँ तक उचित है। आप स्वयं उस विषय पर क्या सोचते हैं कहां आपकी राय नहीं मिलती? इत्यादि। अध्ययन में प्रज्ञा, बुद्धि स्वातंत्र्य, प्रतिभा बढ़नी चाहिए और यह तब ही संभव है जब आप अपने पढ़े लिखे को मनन द्वारा हज़म करें, अपनी सम्पत्ति बनाएँ, उस पर कार्य करें।

मनन के सहयोग से नई कल्पना उत्पन्न होती है। नया उत्साह आता है तथा प्रतिभा प्राप्त होती है। जिस अध्ययन से प्रेरणा (Inspiration) प्राप्त न हुआ वह अध्ययन कैसा? बहुत सा पढ़ते ही पढ़ते रटने से कुछ भी हाथ नहीं लगता। पढ़ो कम, उस पर सोचो अधिक। "अल्पमात्रा, चिंतन, मनन तथा उस पर क्रिया" यही वास्तविक अध्ययन है।

——

दब्बूपन: मानसिक बीमारी।

(लेखक – श्रीयुत रमेशचन्द्र वर्मा, नई दिल्ली)

कुछ व्यक्ति सोचते हैं "हमें कौन पूछने वाला है? हम किस गणना में हैं? हमसे क्या होना जाना है?"– इस प्रकार मनःस्थिति से वे अपनी तुच्छता तथा हीनता की कुत्सित ग्रन्थि को और सुदृढ़ करते हैं और कायरता दब्बूपन–तथा घोर निराशा में निरत रहते हैं?

दब्बूपन – इच्छाशक्ति की दुर्बलता का चिन्ह है। सदा सर्वदा निज अनिष्ट की भावना में रत रहने से वह अन्तर्मन में आरूढ़ (Fix) हो जाती है। दूसरी आदतों की तरह यह भी एक प्रकार की आदत है तथा अन्य आदतों की तरह अभ्यास से प्राप्त होती है। अभ्यास द्वारा ही हम दब्बूपन प्राप्त करते हैं। कभी २ हमारे घर वाले बचपन में कठोर नियंत्रण द्वारा हमें दब्बू बनाते हैं।

प्रश्न है कि दब्बूपन से कैसे मुक्त हों? अपना आध्यात्मिक बल बढ़ाइये। वीरता के, उत्साह के, तथा आत्मविश्वास के प्रबल विचारों को प्रचुरता से मनःकेन्द्र में प्रवेश करने दीजिए। आत्मावलम्बन की भावना को दृढ़ता से अव्यक्त में बिठाइये।

यदि आप अपने को ईश्वरत्व से युक्त समझने लगेंगे, सर्वांग को ईश्वरमय देखने की आदत बना लेंगे तो आपकी दीनता हट जायगी।

मनुष्य जिस स्थिति का निरंतर चिंतन करता है, उस स्थिति का भाव अवश्य उसमें प्रकट होता है अतः तुम यही सोचो कि 'मैं भय तथा दब्बूपन के दूषित विचारों की कल्पना में नहीं रहता। अन्तःकरण को भूत,प्रेत,पिशाच की श्मशान भूमि नहीं बनाता। मेरे अन्तःकरण में तो निर्भयता, श्रद्धा, उत्साह और शान्ति का अखंड राज्य है। मैं चारों ओर से अभय हूं, परम निःशंक हूँ। परमात्मा की गोद में पूर्ण सुरक्षित हूं।"

——

शब्द-योग ।

(योगिराज—श्रीशिवकुमारजी शास्त्री)

वेद में कहा है कि उसने इच्छा किया कि मैं एक से अनेक हो जाऊं और इसीमें सारा संसार उत्पन्न होगया। ब्रह्म ने वेद के अनुसार सृष्टि के आदि में कहा था कि मैं एक हूं अनेक हो जाऊं बस सारे संसार की उत्पत्ति होगई। इंजील में भी कहा है कि आदि में वचन था और वचन से सब कुछ हुआ। कुरान में भी कहा है कि खुदा ने कहा कि हो जा (कुन) बस सब कुछ हो गया। तात्पर्य्य कहने का यह है कि सारा संसार शब्दों से उत्पन्न हुआ है। अब भी जो कुछ हो रहा है उसके कारण शब्द ही हैं। किसी कार्य्य को लीजिये उसका कारण शब्द ही है। संसार की बड़ी २ लड़ाइयां शब्दों ही के कारण हुई हैं। सुलह भी शब्दों ने ही किया। प्रेम और विरोध सबका कारण शब्द है। बिना इच्छा के कुछ नहीं होता। और इच्छा स्वयं शब्दों में हुआ करती है। इच्छा का प्रत्यक्षरूप शब्द है। शब्द इच्छा को व्यक्त करके और अपने धक्के से सारे संसार का हिलाकर इच्छा को पूर्ण कर लेता है। पानी की इच्छा हुई कि वह इच्छा शब्द के रूप में मुंह से निकल पड़ी बस निकलते ही नौकर ने पानी उपस्थित किया। मुंह में पहले पानी शब्द आया और बाद को पानी स्वयम् आ पहुंचा।

सच्ची बात यह है कि इच्छा स्वयं अर्थ रूप है। जिसकी आप इच्छा करते हैं उसके मिलने में ज़रा भी संदेह नहीं है। जिसकी आप इच्छा करते हैं वह इच्छा स्वयम् वह वस्तु है। इच्छा सफलता की वह सीढ़ी है जिसके बाद सफलता स्वयम् खड़ी रहती है। इच्छित वस्तु को प्राप्त करने में देरी नहीं लग सकती। पर न मिलने का कारण यह है कि इच्छा के जो शब्द हमारे भीतर से उठते हैं उन पर हम स्वयम् विश्वास नहीं करते। हमें स्वयम् विश्वास नहीं होता। हमें स्वयम् शंका हो जाती है। हम इच्छा करते ही कह देते हैं कि इसका मिलना कठिन है यह मिलेगा नहीं। हमारे अविश्वास के शब्द इच्छा के शब्दों की हत्या करा डालते है, नहीं तो मनुष्य के शब्दों में ब्रह्मा की शक्ति है।

जो शब्द भीतर दृढ़ता से उठें विश्वास के साथ उठें वा मुंह से बाहर निकलें उन शब्दों में ब्रह्मा की शक्ति है। कहिये और विश्वास के साथ कहिये कि हम निरोग हैं आप निरोग हो जायेंगे। कहिये कि हम अमर हैं—मृत्यु आपके बश में हो जावेगी। विश्वास के साथ कहिये कि हमें वह वस्तु अवश्य प्राप्त होगी उसके मिलने में देरी न लगेगी। चाहे देरी भी लगे पर मिलेगी अवश्य। आप अपना भाग्य, अपना कर्म, अपना संसार, अपनी परिस्थिति और अपने लिये संसार की सारी सामिग्री, अपने शब्दों और अपनी आज्ञाओं से बुला सकते और बना सकते हैं। आपको जिस समय अपने शब्दों की शक्ति का पता लगेगा उस समय आप विधाता का मुँह नहीं ताकेंगे।

ईश्वर आपके भीतर है। आप स्वयम् ईश्वर हैं। आपकी आज्ञा आपके शब्द ईश्वर की आज्ञा और ईश्वर के शब्द हैं। आप विश्वास के साथ आज्ञा दीजिये वह अवश्य हो जायगा। बोले हुए शब्दों से संसार के परमाणुओं में धक्का लगता है और उससे जो लहर उत्पन्न होती है वह तब तक शान्ति नहीं हो सकती जब तक कि वह अंत तक जाकर पूरी न हो जाय। पर हमारा अविश्वास इसका बहुत बड़ा विरोधी और नाशक है। हमारे शब्दों से जो लहर उत्पन्न होती है वह विराट रूप ईश्वर की आत्मा को कँपा देती है। वह निरर्थक नहीं हो सकती। एवरेस्ट की चोटी पर चढ़ने वालों ने यह देखा कि जगह जगह वहाँ पर वर्फ के चट्टान और बादल जमे हुए हैं। वहाँ पर एक शब्द भी ज़रा ज़ोर से बोल देने पर चढ़ने वालों के ऊपर बहुत बड़ी आफत आजाती है। बोलने

से एक एक फर्लाङ्ग का हिमखंड (वर्फ की चट्टान) ऊपर से खिसक पड़ती है और सम्भव है कि उसके सब चढ़ने वाले उसीके नीचे दब जांय। बोलने से वहां के जमे हुए बादल भी हिल जाते हैं और बरसने लगते हैं। बोलने से आकाश में लहर उत्पन्न होती है उसीसे यह सब हुआ करता है। शब्द स्वयम् अपने अणुओं में वह शक्ति रखते हैं जिससे इच्छित पदार्थ बन जांय हम जिस वस्तु की इच्छा या कल्पना करते हैं वह इच्छा स्वयम् वही वस्तु है मन इच्छा वा वस्तु हमारी कल्पना से बाहर नहीं हैं। कल्पना से स्वप्न में सारा संसार बन जाता है। स्वप्न में मन द्वारा बिना रोड़े के सड़क पिट जाती, बिना वृक्षों के बाग लग जाता और हजारों मकान बनकर तैयार हो जाते हैं। मन स्वयम् वस्तु रूप और संसाररूप है। यह संसार की सारी चीजों को बात की बात में बना सकता है। समाधि के समय इच्छा का अद्भुत चमत्कार क्षण क्षण में प्रत्यक्ष देखने में आता है। योगी ने इच्छा किया नहीं कि वह बना नहीं। समाधि के समय योगी जिस वस्तु की इच्छा करता है वह वस्तु उसी समय बनकर तैयार हो जाती है।

स्थूल संसार भी स्वप्न के समान मनोमय और कल्पनामय है। स्वप्न की सृष्टि और जाग्रत अवस्था की सृष्टि में कुछ भेद अवश्य है। पर मन और कल्पना का प्रभाव सर्वत्र है। इस पर हम अपने दूसरे लेखों में बहुत कुछ लिख चुके हैं। प्लेग की कल्पना होते ही प्लेग से भयभीत होते ही ज्वर और गिलटी दिखलाई देने लगती है। यदि कल्पना से ज्वर बढ़ जाता है तो क्या कल्पना से उतर नहीं सकता? यदि हमारा यह विचार-यह भय कि ऐसा न हो कि हमें गिल्टी हो जाय गिल्टी उत्पन्न कर सकता है, तो क्या हमारी निर्भयता और हमारा यह विचार कि हमारे गिल्टी नहीं हो सकती वा हमारी गिल्टी अभी अच्छी हो जायगी हमारा कल्याण नहीं कर सकता? हमारी इच्छा में हमारी कल्पना में या हमारे शब्दों में बनाने और बिगाड़ने की पूरी शक्ति है।

"यथा मनसा मनुते तथा वाचा वदति" जैसा मन में विचार करता है वैसा ही बचन से बोलता है। मनुष्य अधिकतर कुछ न कुछ मनन किया करता है। इसका मतलब यह हुआ कि मनुष्य भीतर अपने मन में, अपने मन से, बातचीत किया करता है; कुछ न कुछ बोला करता है। देखने में आया है कि इन अव्यक्त शब्दों का प्रभाव शरीर पर पड़ता जाता है। मनुष्य के मनन करते हुए चेहरे का उतार चढ़ाव और रंग इस प्रकार से बदलता है कि बिना बोले ही योगी अभ्यासी वा इस विद्या के जानने वाले बतला देते हैं कि यह मनुष्य अमुक बात सोच रहा है। भावनाओं के अनुसार मुख की आकृति और वर्ण बदलता जाता है। सोचते समय कभी मनुष्य का चेहरा पीला पड़ जाता है; कभी प्रसन्न हो जाता है, कभी ललाट का चर्म सिकुड़ जाता है, कभी भृकुटी तिरछी हो जाती और कभी दोनों कपोल लाल हो जाते हैं। इसके सिवाय और भी कई तरह के रूपान्तर और परिवर्तन हुआ करते हैं। इन रूपांतरों को देख कर किसी के भीतर का भाव या मन का विचार जान लेना कठिन नहीं है।

पूर्वोक्त बातों से यह सिद्ध होता है कि हमारे प्रत्येक शब्द का और प्रत्येक विचार का हमारे शरीर पर अद्भुत रूप से प्रभाव पड़ता है। अतः आपको अपने शरीर का जो अंग जिस प्रकार का बनाना हो अपनी आज्ञा से बना सकते हैं। आप नित्य उठकर अपने शरीर को आज्ञा दीजिये कि हमारे शरीर का अमुक अंग ठीक हो जाय इस आज्ञा का वा आपके इस वाक्य और शब्द का प्रभाव कुछ दिनों में प्रत्यक्ष देखने में आवेगा। जिस अंग के लिये आप जो आज्ञा देंगे वह अवश्य पूरा होगा। मनुष्य के शब्दों में रचना करने की वा विधाता बनने की पूरी शक्ति है।

किसीको तुच्छता का भ्रम मत कराइये।

(श्री० रत्नेश कुमारी 'ललन' मैनपुरी स्टेट)

बहुत से शिक्षक तथा माता पिताओं को ये आदत होती है कि वे ज़रा २ सी भूलों पर अथवा शीघ्र पाठ न समझ सकने पर चिढ़ कर कहने लगते हैं—तुम से ये काम हो ही नहीं सकता अथवा तुम भला इसे क्या कर सकोगे ? या फिर यूं कहेंगे—अमुक व्यक्ति की बराबरी तुम क्या कर सकोगे ? तुम तो बस हमेशा ऐसे ही रहोगे । इन बातों का कोमलमति सुकुमार बालकों तथा अल्प वयस्क-किशोर किशोरियों के हृदय पर बहुत ही गहरा और बुरा असर पड़ता है [वयप्राप्त पर अतिशय भावुक व्यक्तियों पर भी कम कुप्रभाव नहीं पड़ता] उनके मन में तुच्छता की ग्रन्थि [यदि मनोवैज्ञानिकों के शब्दों में कहूं] अथवा संस्कार गहराई से [अन्तः चैतना में] अंकित हो जाता है । परिणाम यह होता है इस भावना से सन्तप्त व्यक्ति या तो इसका सक्रिय विद्रोह करता है [अच्छा बन सकने से निराश होकर बुरा बनने को कटिबद्ध हो जाता है] अथवा अज्ञात रूप से [अन्तःचैतना के इस कुसंस्कार से प्रभावित हो जाने के कारण] निष्क्रिय विद्रोह करता है । किसी भी कार्य को आत्म विश्वास जनित उत्साह से वह कर ही नहीं पाता। असफलता का निश्चित चित्र और लोक हंसाई का भय उसकी मन की दृढ़ता और कार्य-कारिणी शक्तियों को निर्जीव बनाता रहता है। अस्तु उसकी शारीरिक, मानसिक आदि शक्तियों की उन्नति का मार्ग अवरुद्ध तथा जीवन नीरस हो जाता है।

सोचिये तो आपके अविचार पूर्ण शब्दों का कितना भीषण परिणाम हुआ ? बस आज से ही दृढ़ प्रतिज्ञा कर लीजिये किसी भी कोमल हृदय को इन वाक्यबाणों के विष से विषाक्त बना कर किसी का भविष्य अन्धकार मय और जीवन नष्ट नहीं करूंगा । जगत्पिता आपके इस सद्-सकल्प से प्रसन्न होकर अपने दो अमूल्य, दुर्लभ वरदानों की वर्षा आप पर करेगा शान्ति और संन्तोष। मुझे विश्वास है मेरे इस अनुरोध को आप अवश्यमेव मानेंगे।

यदि कोई मनुष्य दरिद्री है तो उसे नित्य उठकर कहना चाहिये कि हमारी दरिद्रता मिट जाय हम धनी हो जांय। यह भी सोचना चाहिये कि हम धनी होगये और हमारे चारों तरफ रुपया और सोना चांदी पड़ा हुआ है। सब संन्दूक रुपयों से भरी हैं। इससे अवश्य दरिद्रता मिट जायगी । यदि किसी का दिमाग ठीक नहीं है तो पेट पर हाथ फेर कर नित्य पेट को आज्ञा देनी चाहिये कि ठीक हो जा पेट ठीक हो जायगा। जीवन में आपको जो अभाव है दृढ़तापूर्वक कहिए कि मुझे अमुक वस्तु चाहिए, मैं उसे प्राप्त करूंगा। आपके वह शब्द अदृष्ट से टकरा कर वह वस्तु सामने उपस्थित कर देंगे जिसे आप चाहते हैं।

आपके शरीर का रचियता कोई दूसरा नहीं है, आप स्वयम् अपने शरीर के रचियता हैं। आपके भाग्य का रचियता कोई दूसरा नहीं है अपने भाग्य के विधाता आप स्वयम् हैं । विधाता के बचन में जो शक्ति है वही शक्ति आपके वचन में हैं। विश्वास के साथ जो कहियेगा अवश्य पूरा होगा।

मनुष्य पुण्य का फल सुख चाहता है, परपुण्य नहीं करना चाहता और पाप का फल दुःख नहीं चाहता पर पाप नहीं छोड़ना चाहता । इसीलिये सुख नहीं मिलता और दुःख भोगना ही पड़ता है।

× × ×

पत्नी व्रत ।

(श्री० हरिभाऊजी उपाध्याय)

आशा है, इस लेख के नाम से हमारी बहनें खुश होंगी । खास करके वे बहनें, जिनकी यह शिकायत है कि प्राचीन काल के पुरुषों ने स्त्रियों को हर तरह दबा रक्खा । और वे पुरुष, सम्भव है, लेखक को कोसें, जिन्हें स्त्रियों को अपनी दासी समझने की आदत पड़ी हुई है । यह बात, कि किसने इसको दबा रक्खा है, एक ओर रख दें, तो भी यह निर्विवाद सिद्ध और स्पष्ट है कि आज स्त्री और पुरुष के सम्बंध पर और उनके मौजूदा पारस्परिक व्यवहार पर नये सिरे से विचार करने की आवश्यकता उपस्थित होगई है । स्त्री और पुरुष दो परस्पर पूरक शक्तियां हैं और उनका पृथक पृथक तथा सम्मिलित बल और गुण व्यक्ति और समाज के हित और सुख में लगना अपेक्षित है । यदि दोनों के गुणों और शक्तियों का समान विकास न होगा, तो उनका पूरा और उचित उपयोग न हो सकेगा, पक्षी का एक पंख यदि कच्चा या कमजोर हो, तो वह अच्छी तरह उड़ नहीं सकता । गाड़ी का एक पहिया यदि छोटा या टूटा हो, तो वह चल नहीं सकती हिन्दू समाज में आज पुरुष कई बातों में स्त्रियों से ऊंचा उठा हुआ, आगे बढ़ा हुआ, स्वतंत्र और बलशाली है । धर्म मंदिरों में उसका जय जय कार है, साहित्य कला में उसका आदर सत्कार है, शिक्षा दीक्षा में भी वही अगुआ है । स्त्रियों को न पढ़ने की स्वतंत्रता और सुविधा, न घर से बाहर निकलने की । परदा और घूंघट तो नाग-पाश की तरह उन्हें जकड़े हुए हैं । चूल्हा चौका, धोना-मांजना, बालबच्चे यह हिन्दू स्त्री का सारा जीवन है । इस विषमता को दूर किये बिना हिन्दू समाज का कल्याण नहीं । देश और काल के ज्ञानी पुरुषों को चाहिये कि वे स्त्रियों के विकास में अपना कदम तेजी से आगे बढ़ायें । जहां तक लब्ध-प्रतिष्ठ बलवान और प्रभावशाली व्यक्ति के सद्गुणों से सम्बन्ध है, हिन्दू पुरुष हिन्दू स्त्री से बढ़ चढ़ कर है । और जहां तक अन्तर्जगत् के गुण और सौन्दर्य से सम्बन्ध है, वहां तक स्त्रियाँ पुरुषों से बहुत आगे हैं । पुरुषों का लौकिक जीवन अधिक आकर्षक है, उपयोगी है; व्यक्तिगत जीवन अधिक दोषयुक्त, नीरस और कलुषित है । अपने सामाजिक प्रभुत्व से वह समाज को चाहे लाभ पहुंचा सकता हो, पर व्यक्तिगत विकास में वह पीछे पड़ गया है । विपक्ष में स्त्रियों के उच्च गुणों का उपयोग देश और समाज को कम होता है, परन्तु व्यक्तिगत जीवन में वे उनको बहुत ऊंचा उठा देते हैं । अपनी बुद्धि चातुरी से पुरुष सामाजिक जगत में कितना ही ऊंचा उठ जाता हो, व्यक्तिगत जीवन उसका भोग विलास, रोग शोक, भयचिन्ता में समाप्त हो जाता है । स्त्रियों की गति समाज और देश के व्यवहार जगत में न होने के कारण, उनमें सामाजिकता का अभाव पाया जाता है । अतएव अब पुरुषों के जीवन का अधिक व्यक्तिगत और पवित्र बनाने की आवश्यकता है, और स्त्रियों के जीवन को सामाजिक कामों में अधिक लगाने की । पुरुषों और स्त्रियों के जीवन में इस प्रकार सामंजस जब तक न होगा, तब तक न उन्हें सुख मिल सकता है, न समाज को ।

यह तो हुआ स्त्री पुरुषों के जीवन का सामान्य प्रश्न । अब रहा उनके पारस्परिक सम्बन्ध का प्रश्न । मेरी यह धारणा है कि स्त्री, पुरुष की अपेक्षा अधिक बफ़ादार है । पुरुष एक तो सामाजिक प्रभुता के कारण और दूसरे अनेक भलेबुरे लोगों और वस्तुओं के सम्पर्क के कारण अधिक बेवफा होगया है । स्त्रियां व्यक्तिगत और गृह जीवन के कारण स्वभावतः स्वरक्षण शील अतएव बफ़ादार रह पाई है । पर अब हमारी सामाजिक अवस्था में ऐसा उथल-पुथल होरहा है कि पुरुषों का जीवन अधिक उच्च, सात्विक और श्रेष्ठ एवं बफ़ादार बने बिना

समाज का पाँव आगे न बढ़ सकेगा। अब तक पुरुषों ने स्त्रियों के कर्तव्यों पर बहुत जोर दिया है। उनकी वफादारी, पातिव्रत हमारे यहां पवित्रता की पराकाष्ठा मानी गई है। अब ऐसा समय आगया है कि पुरुष अपने कर्तव्यों की ओर ज्यादा ध्यान दें। व्यभिचारी, दुराचारी, आक्रामक, अत्याचारी पुरुष के मुंह में अब पतिव्रत-धर्म की बात शोभा नहीं देती। हमारी माताओं और बहनों ने इस अग्नि परीक्षा में तप कर अपने को शुद्ध सुवर्ण सिद्ध कर दिया है। अब पुरुष की बारी है। अब उसकी परीक्षा का युग आरहा है। अब उसे अपने लिये पत्नीव्रत धर्म की रचना करनी चाहिये। अब स्मृतियों में, कथा वार्ताओं में, पत्नीव्रत धर्म की विधि और उपदेश होना चाहिये। पत्नी व्रत धर्म के मानी हैं पत्नी के प्रति वफादारी। स्त्री अब तक जैसे पति को परमेश्वर मान कर एक निष्ठा से उसे अपना आराध्यदेव मानती आई है, उसी प्रकार पत्नी को गृहदेवी मानकर हमें उसका आदर करना चाहिये, उसके विकास में हर प्रकार सहायता करनी चाहिये, और सप्तपदी के समय जो प्रतिज्ञायें पुरुष ने उसके साथ की हैं उनका पालन एक निष्ठा-पूर्वक होना चाहिये।

सात्विक सहायताएं।

इस मास ज्ञान यज्ञ के लिए निम्न सहायताएं प्राप्त हुईं। अखंडज्योति इनके प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करती है।

१०) श्री० हरीरामजी लखीमपुर खीरी
६।=) पं० कन्हैयालाल शर्मा, डूँडलोद
८) श्री० गंगाचरणजी ब्रह्मचारी, उमरी
५) बा० ज्योतीप्रसादजी पिपिल, आगरा
३) श्री० सत्यप्रकाश जी बंसल, हापुड़
३।) पं० प्रभूदयाल शर्मा वैद्य, कोकन
१) पं० राधेश्याम शर्मा, खेरि

ईर्षा क्यों करते हो ?

(श्री० हरदयालजी एम० ए०)

प्रकृति सब प्रकार के उपहार एक व्यक्ति को नहीं देता, किन्तु वह उनमें से कुछ उपहार प्रत्येक व्यक्ति को देती है जिससे वह सब बराबर हो जाता है। आप सुन्दर और बुद्धिमान और प्रसिद्ध और सब कुछ नहीं हो सकते। 'मैं' और 'मुझको' के विषय में अधिक सोचना बंद कर दो, वरन् 'हम' और 'हमको' के विषय में अधिक सोचा करो। इस प्रकार करने से ईर्ष्या अपने आप दूर हो जावेगी, और आप में सहानुभूति पूर्ण कद्र करने की प्रवृत्ति उत्पन्न होकर विकासित होगी। यदि कोई व्यक्ति आपसे अधिक प्रसिद्ध है तो यह विचार करो, यह ख्याति मेरी ही है, केवल यह दूसरे के नाम के साथ है।" आपके भाई-दूसरे मनुष्य में-जो कुछ गुण हैं वह मानवी एकता के नियम से आपके हो हैं। आपको यह भी सोचना चाहिये कि प्रत्येक पुरुष किन्हीं बातों में दूसरों से अधिक और किन्हीं बातों में कम होता है। इस प्रकार प्रत्येक व्यक्ति की क्षतिपूर्ति हो जाती है। ईर्ष्या, अभिमान और असमानता से उत्पन्न होती है, यह एक पूर्णतया प्रति-शोधात्मक और अलाभदायक भाव है, क्यों कि आप केवल दूसरों से ईर्ष्या करके सौन्दर्य, बुद्धि अथवा ख्याति को प्राप्त नहीं कर सकते, ईर्ष्या करने से आप उस कुत्ते के समान हो जाते हो, जो हाथी अथवा मोटरकार पर भौंकता है।

ईर्ष्या करने से आपको कुछ नहीं मिलता। इसके विरुद्ध अपने ही ओछेपन और स्वार्थ परता से आपके मन की शान्ति और आपका आनन्द दूर हो जाता है।

साधु की खोज।

(श्री स्वामी सत्य भक्त जी वर्धा)

---

(१)

– भाई, तुम इन जानवरों की पूजा क्यों करते हो ?

– साहब. मैं साधुओं का पुजारी हूं । एक बड़े भारी मुनिराज मुझे मिल गये थे, उनने कहा– “बिना नग्नता के साधुता नहीं रहती बल्कि नग्नता हो तो साधु के सब गुण आ जाते हैं. इसलिये नग्न दिगम्बर को छोड़कर तुम किसी का पूजा न किया करो” । तब से मैं नग्न दिगम्बरों की ही पूजा किया करता हूँ और इस कसौटी में पशु ही सबसे बड़े दिगम्बर हैं ।

– अरे क्या मूर्ख हुये हो ! नंगा होने से क्या कोई साधु बन सकता है ? तुम साधु की पहचान नहीं जानते ?

– तो साधु की पहिचान क्या है ?

– जो मुंहपत्ती लगाता है – वह साधु है. मुंह बन्द रखने से वायु के जीव नहीं मरते, समझे ?

– जी हां, समझ गया ।

(२)

– अरे भाई, तुम इस घोड़े की पूजा क्यों करते हो?

– जी, मैं साधु-पूजक हूं – एक साधुजी ने कहा था कि मुंह बन्द रखने वाले साधु होते हैं । इस घोड़े को तोबरा लगा था, मैंने सोचा इससे अच्छा मुँह बन्द कौन करेगा, इसलिये इसकी पूजा कर रहा हूं।

– पागल हुए है, तोबरा लगाने से कहीं कोई साधु होता है ? साधु की पहिचान यह तोबरा नहीं, किन्तु जटा है । समझे ?

– जी हां. समझ गया ।

(३)

—अरे भाई, इस नारियल को वेदी पर क्यों रख छोड़ा है और इस पर ये फूल क्यों डाल रक्खे हैं ?

—जी. इसकी पूजा की थी । मैं साधु-पूजक हूं, एक साधुजी ने कहा था कि साधु की पहिचान जटा है, इसलिये मैंने सोचा कि इस नारियल से बढ़कर स्वाभाविक जटा कहां मिलेगी, इसलिये इसकी पूजा किया करता हूं ।

– हिस्ट, इस तरह तुम साधु को नहीं पा सकते ।

– तो कैसे पा सकता हूं ? जो जैसा कहता है उसी के अनुसार करता हूं, फिर भी अभी तक मुझे साधु न मिला । क्या आप मुझे साधु के दर्शन करा सकते है ?

– तुम क्या करते हो ?

—मैं मजदूरी करता हूं । आठ घंटा मजदूरी करके जो समय बचा पाता हूं उसमें सुबह-शाम भगवान का भजन करता हूं और मुहल्ले की विधवाएँ और बच्चे जो काम बता देते हैं – उनका काम किया करता हूं । और मैं मूरख क्या कर सकता हूं ?

—बदले के लिये तो मैं मजदूरी करता हूं ये सब पैसे के लिये नहीं करता, मजदूरी से पेट के लिये मिल ही जाता है, तब फालतू समय में किसी रोगी की सेवा कर दी, किसी अनाथ स्त्री का सामान ला दिया, किसी के बच्चे सम्हाल दिये, किसी की गाय लगा दी – इसमें मेरा क्या बिगड़ा ? उनका भी काम हो गया अपना भी समय कट गया – इसमें पैसे के लेने-देने की क्या बात है ?

– तब तुम्हें साधु-दर्शन हो जायगा ।

– धन्य भाग्य ! बताइये कब और कहां होगा ?

– अब और यहीं । देखो ! (आयना दिखाकर)

– क्या देखूँ यह तो आयना है । इसमें तो मेरा ही मुंह दिखता है ?

– बस तुम्हीं साधु हो । जो कम से कम लेकर अधिक से अधिक देता है – वही साधु है । अच्छा साधुजी, मैं आपको प्रणाम करता हूं । अब साधु-दर्शन के लिये कहीं न भटकना !

अभ्यास से मिलता है ।

(प्रो० श्रीमोहनलाल जी वर्मा M. A. LL. B.)

———

ऐथेन्स निवासी सुकरात ग्रीस के सबसे बड़े तत्त्वज्ञानी थे। इन्होंने अपना जीवन नवयुवकों को नीति तथा आचरण सम्बन्धी शिक्षा देने तथा सद्गुणों से प्रेम करने में व्यतीत किया। इनका कहना था—"सद्गुण ज्ञान हैं, दुर्गुण अज्ञान हैं।"

एक दिन ऐथेंस में एक व्यक्ति आया जो यह दावा करता था कि चेहरा देखकर मैं किसी का भी चरित्र बता सकता हूं। उसकी चतुराई की परीक्षा लेने के लिए सुकरात के उपदेश सुनने वाले तथा उनके अनुयायी नवयुवकों ने उस व्यक्ति को बुलाया और सुकरात की ओर संकेत करके कहा कि बतलाओ तो इस वृद्ध पुरुष का चरित्र कैसा है? सुकरात अत्यन्त कुरुप थे। काला भद्दा रंग, बेढंगा शरीर, बुरी तरह फैली हुई मूँछ डाढ़ी। जीवन की संध्या थी। बुढ़ापा अट्टहास कर रहा था।

सुकरात की ओर देखकर वह नवागन्तुक बोला—"यह वृद्ध दुर्गुणों से युक्त, सड़े दिमाग, तथा चिड़चिड़े स्वभाव का है!" इस पर नवयुवक हँसे क्योंकि वे अपने गुरु के सद्गुणों एवं आश्चर्य मयी विभूतियों से परिचित थे किन्तु सुकरात ने मुस्कुराते हुए कहा—"वह आगन्तुक गलती नहीं कर रहा है। स्वभाव से मेरा झुकाव बुराई की ओर था, मैं बात बात पर झगड़ता था, लोगों को परेशान करता था किन्तु चिर कालीन अभ्यास से मैंने अपनी कुप्रवृत्तियों को दबा कर अपने वश में कर लिया है। समस्त शक्तियों का गुप्त रहस्य यही है कि तुम अपने सद् उद्देश्यों को पुष्ट करो, और उनकी प्राप्ति का दीर्घ काल तक अभ्यास करो।"

जो कार्य जितनी बार किया जाता है, वह प्रत्येक बार सरल तथा प्रिय बनता जाता है—उसकी पहले की कठिनाइयां दूर होता जाती हैं; नई नई बातें मालूम होती जाती हैं और प्रारंभ की स[illegible] कठिनाइयां धीरे धीरे सुगम होती जाती है। अभ[illegible] का ऐसा ही नियम है।

अभ्यास एक प्रकार का मानसिक-मार्ग[illegible] अतः मन के योग की बड़ी आवश्यकता पड़ती[illegible] जब पहले पहिल तुम कोई कार्य हाथ में लेते [illegible] अड़ियल अश्व की भाँति मन झिझकता, अड़ता[illegible] ड़ता एवं बड़ी कठिनाई से मार्ग पर चलता है। प्रत्येक कार्य का प्रारम्भ नितान्त कठिन एवं क[illegible] होता है। एक बार के बाद जब पुनः उस कार्य[illegible] करते हो तो वह अपेक्षाकृत सरलता से होत[illegible] पुनः पुनः करने से सफलता की अभिवृद्धि हो[illegible] तथा कार्य अत्यन्त सुगम हो जाता है।

आप जिस उत्कृष्ट गुण, या आदत की (Development) करना चाहते हैं उसे[illegible] से ही दृढ़तापूर्वक प्रारंभ कर दीजिए। आरं[illegible] झिझक होगी किन्तु तुम इस नवीन मार्ग प[illegible] रहो। उसे जितना उपयोग में लाओगे, वह [illegible] ही सुगम एवं दृढ़ बनेगा। बारंबार उसी मा[illegible] चलने से वह आदत बन जायगा।

मानलिया आप अनुभव करते हैं कि व्य[illegible] करना जरूरी है। लंगोट पहिन कर एकान्त[illegible] में भी आप चले जाते हैं। जब पहिले दिन डंड[illegible] करके निकलते हैं तो शरीर अकड़ा सा, नस[illegible] दुःखती हुई प्रतीत होती है। दूसरे दिन ज[illegible] चाहता। बस, यहीं से आपको दृढ़ता पकड़[illegible] व्यायाम दृढ़तापूर्वक दो चार मास कर [illegible] पश्चात् आदत का रूप धारण कर लेगा, खान पान की भाँति यह भी आपके स्वभाव क[illegible] महत्त्वपूर्ण अंग बन जायगा।

सभ्य देशों में हजारों व्यक्ति आध्यात्म के[illegible] मार्ग का अभ्यास कर अपनी मनोवृत्तियों को[illegible] दिशा की ओर मोड़ रहे हैं। तुम भी जो स[illegible] चाहते हो मन की दृढ़ता के अभ्यास से कर सकते हो।

———

प्रवाही पथिक।

(श्री० रामनरायणजी श्रीवास्तव, हृदयस्थ)

जीव एक पथिक है। ऐसा पथिक जिसकी यात्रा व जारी रहती है। तीव्रगति से बहती हुई नदी में न प्रकार एक हलका तिनका बहता चला जाता सी प्रकार गतिशील सृष्टि की अजस्र धारा में रा जीवन भी निर्बाध गति से बहता चला यह प्रवाह क्रम वृत्ताकार है, इसका आदि अंत । अनन्त काल से अनन्त योजनों की यात्रा ते रहने पर भी इस यात्रा का अन्त नहीं आता।

जीवन एक अखण्ड धारा है। यह कभी न ने वाली अखण्ड ज्योति है। जीव अनादि और न्त है, इस जीव का स्वाभाविक धर्म ही जीवन । जब तक जीव है तब तक जीवन कायम रहेगा। सत्य को समझ लेने से अमृतत्व की प्राप्ति ाती है। मृत्यु का भय, जिसे संसार का सबसे ा भय कहा जाता है, वास्तव में एक भ्रामक ना है। जीव कभी नष्ट नहीं होता और न के जीवन का ही कभी समाप्ति होती है।

शरीर का बदलना एक साधारण स्वाभाविक र आवश्यक क्रिया है। जहां हलचल होगी, ा और गति जारी रहेगी वहां परिवर्तन अवश्य ा। उत्पन्न होने वाली वस्तु का नाश अवश्य- ावी है। यदि ऐसा न हो तो सृष्टि का कार्य लना ही बन्द होजायगा। मृत्यु में भय जैसी कोई तु नहीं है। यह एक विश्राम है जिसे प्राप्त करने बाद नया, अधिक सक्षम शरीर प्राप्त होता है।

जीव अमर है। मृत्यु के काल्पनिक भ्रम से ने या घबराने को हमें जरा भी आवश्यकता नहीं । पथिक को एक मंजिल छोड़कर दूसरी पर ार्पण करते हुए कुछ झिझक या घबराहट नहीं ती फिर हम प्रवाही पथिक अपनी अमर यात्रा एक मंजिल से दूसरी पर चलते समय डरें क्यों? यु से घबरावें क्यों?

हम अपने बनें।

(लेखक—श्रीयुत महेश वर्मा, हर्बर्ट कालिज, कोटा)

तुम व्यर्थ में दूसरों के अनर्थकारी सन्देशों को ग्रहण कर लेते हो, तुम वह सच मान बैठते हो जो दूसरे कहते हैं। तुम स्वयं अपने आपको दुःखी करते हो और कहते हो कि दूसरे लोग हमें चैन नहीं लेने देते। तुम स्वयं ही दुःख का कारण हो, स्वयं ही अपने शत्रु हो। जो किसी ने कुछ कह दिया तुमने मान लिया। यही कारण है कि तुम उद्विग्न रहते हो।

सच्चा मनुष्य एक बार उत्तम संकल्प करने के पश्चात् यह नहीं देखता कि लोग क्या कह रहे हैं। वह अपनी धुन का पक्का होता है। सुकरात के सामने जहर का प्याला लाया गया किन्तु उसकी राय को कोई न बदल सका। बंदा बैरागी को भेड़ों की खाल पहिना कर काले मुँह गली गली फिराया गया। काजियों ने कहा कि इस्लाम ग्रहण कर लो, तुम्हें प्राण दान दिया जायगा। इस प्रस्ताव को सुनकर उसने कहा था—मैं जिस धर्म, जिस बात में, जिस तथ्य में, विश्वास नहीं करता उसे नहीं मान सकता। आज्ञा के उल्लंघन में उसे हाथी के पांव तले कुचलवा कर मार डाला गया किन्तु उसने दूसरों की राय न मानी।

दूसरे के इशारों पर नाचना, दूसरों के सहारे पर निर्भर रहना, दूसरों की झूठी टीका टिप्पणी से उद्विग्न होना मानसिक दुर्बलता है। जब तक मनुष्य स्वयं अपना स्वामी नहीं बन जाता, तब तक उसका सम्पूर्ण विकास नहीं हो सकता। दूसरों का अनुकरण करने में मनुष्य अपनी मौलिकता से हाथ धो बैठता है।

स्वयं विचार करना सीखो। दूसरों के बहकाए में न आओ। कर्तव्य-पथ पर बढ़ते हुए तुम्हें दूसरे क्या कहते हैं—इसकी चिन्ता न करो। यदि ऐसा करने का साहस तुममें नहीं है तो जीवनभर दासत्व के बंधनों से जकड़े रहोगे।

फलाहार से रोग निवारण।

० श्री बिट्ठलदास मोदी, आरोग्य मंदिर, गोरखपुर)

फलों के रस कृमिनाशक होते हैं। उनके उपयोग हमारे शरीर में स्थित रोग-कीटाणु नष्ट हो जाते। डाक्टरों का कहना है कि फलों में जो साइट्रिक सिड और मालिक एसिड होता है उनके संपर्क में आकर कीटाणु एक क्षण के लिये भी ठहर नहीं सकते। नीबू और खट्टे सेव का रस तो इस काम को और भी तेजी से करता है। यही कारण है कि घावों पर नीबू का हल्का रस लगा देने के बाद खुला छोड़ देने का रिवाज बढ़ रहा है। अपने कृमिनाशक प्रभाव के कारण पायोरिया रोग में नीबू का रस मुँह और दांत साफ करने के लिये अधिक व्यवहृत होता है। दाद पर जो नीबू लगाने से दाद अच्छे हो जाते हैं वह इसका कृमिनाशक प्रभाव ही है। कृमि के डर से जो लोग पानी उबाल कर पीते हैं यदि वे पानी में नीबू का रस निचोड़कर पाएं तो वही काम निकल सकता है।

ज्वर के रोगी को तो यदि कोई भी भोजन दिया जा सकता है तो वह फलों का रस ही है। जर्मनी में ऐसे रोगियों को किशमिश, मुनक्का आदि मीठे फलों को उबाल कर उसका पानी छानकर पिलाने का आम रिवाज है। अनानास, अनार, नीबू, नारंगी, सेव अँगूर, मकोय, मुनक्का आदि के रस को पानी में मिलाकर ज्वर के रोगी को फायदे के साथ पिलाया जा सकता है। इस विधि से रोगी पानी अधिक पी सकेगा और फलों का रस भी शरीर शुद्धि में सहायक होगा गुर्दे आदि की बीमारी में जिसमें अधिक पेशाब लाने की जरूरत होती है इस विधि से पानी अधिक पिलाया जा सकता है।

कब्ज दूर करने के लिये फल से अच्छा सहायक मिलना कठिन है। इस रोग को दूर करने के लिये फल भोजन से तुरन्त पहले या थोड़ा पहले खाने चाहिये। यदि नाश्ते के लिये ऐसे रोगी केवल फल का व्यवहार करें तो अधिक लाभ होगा। भोजन के साथ फल का व्यवहार करते समय यह अवश्य खयाल रखना चाहिये कि फल खट्टे न हों। श्वेतसार मुंह के लार से पचता है और खटाई के व्यवहार से लार निकलना कम हो जाता है अतः यदि खट्टे ही फलों का व्यवहार करना हो तो उन्हें भोजन के अंत में करना चाहिये।

गठिया, अनिद्रा, पुराने सिर दर्द के रोगी यदि अधिकतर फलों का व्यवहार करें तो वे धीरे धीरे कुछ दिनों में अवश्य अच्छे हो जायेंगे।

जिनकी जबान हमेशा गंदी रहती है, मुंह से बदबू आया करती है यदि वे कुछ दिनों तक केवल फल या फल और गेहूं के आटे की रोटी खाकर रह जायं तो उनकी जबान साफ हो जाय और मुंह से बदबू आना बंद हो जाय। ऐसे रोगियों के लिये अच्छा होगा कि वे सबेरे केवल फल दोपहर को रोटी और शाम को फल के साथ कुछ मेवे भी लें। इस भोजन से ताकत भी बनी रहेगी और उनका रोग भी चला जायगा।

फलों का रस सुपाच्य होने के कारण बच्चों के लिये एक बहुत ही उपयोगी भोजन है। टमाटर या संतरे का रस उन्हें दूध के साथ पिलाया जाय तो बहुत लाभ हो।

सूचना—इस लेख के लेखक महोदय आरोग्य शास्त्र के प्रकाण्ड पंडित और प्राकृतिक चिकित्सा के अनुभवी ज्ञाता है। अखण्ड ज्योति के पाठक उनसे पत्र व्यवहार करके अपने रोगों के निवारण एवं स्वास्थ सुधार में पत्र व्यवहार द्वारा बहुमूल्य सम्मतियां प्राप्त कर सकते हैं। पत्र व्यवहार का पता—डाक्टर विट्ठलदास मोदी, आरोग्य मंदिर, गोरखपुर, है।

—संपादक

तपस्वी बबूल।

(श्री० नरेन्द्र)

मैं हूं एक समान अहिर्निशि, एक रूप प्रतिवार !
मेरी जय श्री विश्व विजय, श्री यह कांटों का हार !
दो दिन के बसन्त में हँसकर,
कहता मैं न विश्व श्री नश्वर ।
पलभर के पावस में रह कर,
कहता मैं न. 'विश्व दुख-सागर ॥'
सुख दुख एक समान मुझे सब, मुझे न भेद विकार !
लाती मलियानिल कलि किस लय,
तरुओं के आँचल भर जाती ।
आती फिर झँझा की वारी,
आँखों में आंधी भर जाती ॥
मैं अपने अभाव में श्रीयुत, श्री अभाव शृङ्गार ।
कभी न बरसे सरस सुरभि घन,
मुझे न व्यापी पर जग-ज्वाला ।
निर्गुण फूल फली कांटों की,
विधि ने दी मुझको मणि माला ॥
व्यङ्ग रूप यह बाम विधाता का मुझको उपहार ।
कण्टक मय जीवन आजीवन,
पर मैं निर्भय विश्वासी हूं ।
हूं समर्थ, मैं सबल सनातन,
पर नित नव बल अभिलाषी हूं ॥
सबल बनूं, यदि बरसें कांटे नभ से शतशत धार ।
मैं स्थित प्रज्ञ-विज्ञ पहचानें,
अपना जीवन भार उठाए ।
चाहे राशि राशि शूलों से,
फिर फिर मेरा तन भर जाए ॥
मैं हूं धीर बीर सन्यासी, दृढ़ता ही आधार ।
मैं हूं एक समान अहिर्निशि, एक रूप प्रतिवार ॥

— प्रभात फेरी,

— सं० श्रीराम शर्मा "अखण्ड-ज्योति" कार्यालय मथुरा।